पक्षविचार

पक्ष के संबन्ध में यहाँ चार बातों पर विचार है—१-पक्ष का लक्षण—स्वरूप, २—लक्षणान्तर्गत विशेषण की व्यावृत्ति, ३—पक्ष के आकारनिर्देश, ४—उसके प्रकार।

१-बहुत पहिले से ही पक्ष का स्वरूप विचारपथ में आकर निश्चित सा हो गया था फिर भी प्रशस्तपाद ने प्रतिज्ञालक्षण करते समय उसका चित्रण स्पष्ट कर दिया है[1]। न्यायप्रवेश में[2] और न्यायबिन्दु में[3] तो यहाँ तक लक्षण की भाषा निश्चित हो गई है कि इसके बाद के सभी दिगम्बर-श्वेताम्बर तार्किकों ने उसी बौद्ध भाषा का उन्हीं शब्दों से या पर्यायान्तर से अनुवाद करके ही अपने-अपने ग्रन्थों में पक्ष का स्वरूप बतलाया है जिसमें कोई न्यूनाधिकता नहीं है।

२—लक्षण के इष्ट, असिद्ध, और अबाधित इन तीनों विशेषणों की व्यावृत्ति प्रशस्तपाद और न्यायप्रवेश में नहीं देखी जाती किन्तु अबाधित इस एक विशेषण की व्यावृत्ति उनमें स्पष्ट है[4]। न्यायबिन्दु में उक्त तीनों की व्यावृत्ति[5] है।

---

१ 'प्रतिपिपादयिषितधर्मविशिष्टस्य धर्मिणोऽपदेशविषयमापादयितुं उद्देशमात्रं प्रतिज्ञा .. अविरोधिग्रहणात् प्रत्यक्षानुमानाभ्युपगतस्वशास्त्रस्ववचनविरोधिनो निरस्ता भवन्ति'—प्रशस्त० पृ० २३४।

२ 'तत्र पक्षः प्रसिद्धो धर्मी प्रसिद्धविशेषेण विशिष्टतया स्वयं साध्यत्वेनेप्सितः। प्रत्यक्षाद्यविरुद्ध इति वाक्यशेषः। तद्यथा नित्यः शब्दोऽनित्यो वेति।'—न्यायप्र० पृ० १।

३ 'स्वरूपेणैव स्वयमिष्टोऽनिराकृतः पक्ष इति।'—न्यायबि० ३. ४०।

४ 'यथाऽनुष्णोऽग्निरिति प्रत्यक्षविरोधी, घनमम्बरमिति अनुमानविरोधी, ब्राह्मणेन सुरा पेयेत्यागमविरोधी, वैशेषिकस्य सत्कार्यमिति ब्रुवतः स्वशास्त्रविरोधी, न शब्दोऽर्थप्रत्यायक इति स्ववचनविरोधी।'-प्रशस्त० पृ० २३४। 'साधयितुमिष्टोपि प्रत्यक्षादिविरुद्धः पक्षाभासः। तद्यथा—प्रत्यक्षविरुद्धः, अनुमानविरुद्धः, आगमविरुद्धः, लोकविरुद्धः, स्ववचनविरुद्धः, अप्रसिद्धविशेषणः, अप्रसिद्धविशेष्यः, अप्रसिद्धोभयः, प्रसिद्धसम्बन्धश्चेति।'—न्यायप्र० पृ० २।

५ 'स्वरूपेणेति साध्यत्वेनेष्टः। स्वरूपेणैवेति साध्यत्वेनेष्टो न साधनत्वेनापि। यथा शब्दस्यानित्यत्वे साध्ये चाक्षुषत्वं हेतुः, शब्देऽसिद्धत्वात्साध्यम्, न पुनस्तदिह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनग्रन्थों में भी तीनों विशेषणों की व्यावृत्ति स्पष्टतया बतलाई गई है। अन्तर इतना ही है कि माणिक्यनन्दी (परी० ३. २०.) और देवसूरि ने (प्रमाणन० ३. १४-१७) तो सभी व्यावृत्तियाँ धर्मकीर्ति की तरह मूल सूत्र में ही दरसाई हैं जब कि आ० हेमचन्द्र ने दो विशेषणों की व्यावृत्तियों को वृत्ति में बतलाकर सिर्फ अबाध्य विशेषण की व्यावृत्ति को सूत्रबद्ध किया है। प्रशस्तपाद ने प्रत्यक्ष-विरुद्ध, अनुमानविरुद्ध, आगमविरुद्ध, स्वशास्त्रविरुद्ध और स्ववचनविरुद्ध रूप से पाँच बाधितपक्ष बतलाए हैं। न्यायप्रवेश में भी बाधितपक्ष तो पाँच ही हैं पर स्वशास्त्रविरुद्ध के स्थान में लोकविरुद्ध का समावेश-है। न्यायबिन्दु में आगम और लोकविरुद्ध दोनों नहीं हैं पर प्रतीति-विरुद्ध का समावेश करके कुल प्रत्यक्ष, अनुमान, स्ववचन और प्रतीति-विरुद्ध रूप से चार बाधित बतलाए हैं। जान पड़ता है, बौद्ध परम्परागत आगमप्रामाण्य के अस्वीकार का विचार करके धर्मकीर्त्ति ने आगमविरुद्ध को हटा दिया है। पर साथ ही प्रतीतिविरुद्ध को बढ़ाया। माणिक्यनन्दी ने (परी० ६.१५) इस विषय में न्यायबिन्दु का नहीं पर न्यायप्रवेश का अनुसरण करके उसी के पाँच बाधित पक्ष मान लिये जिनको देवसूरि ने भी मान लिया। अलबत्ता देवसूरि ने (प्रमाणन० ६. ४०) माणिक्यनन्दी का और न्यायप्रवेश का अनुसरण करते हुए भी आदिपद रख दिया और अपनी व्याख्या रत्नाकर में स्मरणविरुद्ध, तर्कविरुद्ध रूप से अन्य बाधित पक्षों को भी दिखाया। आ० हेमचन्द्र ने न्यायबिन्दु का प्रतीतिविरुद्ध ले लिया, बाकी के पाँच न्यायप्रवेश और परीक्षामुख के लेकर कुल छः बाधित पक्षों को सूत्रबद्ध किया है। माठर (सांख्यका० ५) जो संभवतः न्यायप्रवेश से पुराने हैं उन्होंने पक्षाभासों की

साध्यत्वेनेष्टं साधनत्वेनाप्यभिधानात्। स्वयमिति वादिना। यस्तदा साधनमाह। एतेन यद्यपि क्वचिच्छास्त्रे स्थितः साधनमाह, तच्छास्त्रकारेण तस्मिन्धर्मिण्यनेकधर्माभ्युपगमेऽपि, यस्तदा तेन वादिना धर्मः स्वयं साधयितुमिष्टः स एव साध्यो नेतर इत्युक्तं भवति। इष्ट इति यात्रार्थे विवादेन साधनमुपन्यस्तं तस्य सिद्धि-मिच्छता सोऽनुक्तोऽपि वचनेन साध्यः। तदधिकरणत्वाद्विवादस्य। यथा परार्था-श्चक्षुरादयः संघातत्वाच्छयनासनाद्यङ्गवद् इति, अत्रात्मार्था इत्यनुक्तावप्यात्मार्थता साध्या, अनेन नोक्तमात्रमेव साध्यमित्युक्तं भवति। अनिराकृत इति एतल्लक्षण-योगेऽपि यः साधयितुमिष्टोऽप्यर्थः प्रत्यक्षानुमानप्रतीतिस्ववचनैर्निराक्रियते न स पक्ष इति प्रदर्शनार्थम्।'– न्यायबि ३. ४१–५०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नव संख्या मात्र का निर्देश किया है, उदाहरण नहीं दिये। न्यायप्रवेश में सोदाहरण नव पक्षाभास निर्दिष्ट हैं।

३—आ० हेमचन्द्र ने साध्यधर्मविशिष्ट धर्मी को और साध्यधर्म मात्र को पक्ष कहकर उसके दो आकार बतलाए हैं, जो उनके पूर्ववर्ती माणिक्यनन्दी (३. २५–२६, ३२) और देवसूरि ने (३. १६–१८) भी बतलाए हैं। धर्मकीर्त्ति ने सूत्र में तो एक ही आकार निर्दिष्ट किया है पर उसकी व्याख्या में धर्मोत्तर ने (२.८) केवल धर्मी, केवल धर्म और धर्मधर्मिसमुदाय रूप से पक्ष के तीन आकार बतलाए हैं। साथ ही उस प्रत्येक आकार का उपयोग किस-किस समय होता है यह भी बतलाया है जो कि अपूर्व है। वात्स्यायन ने (न्यायभा० १.१.३६) धर्मविशिष्ट धर्मी और धर्मिविशिष्ट धर्म रूप से पक्ष के दो आकारों का निर्देश किया है। पर आकार के उपयोगों का वर्णन धर्मोत्तर की उस व्याख्या के अलावा अन्यत्र पूर्व ग्रन्थों में नहीं देखा जाता। माणिक्यनन्दी ने इस धर्मोत्तरीय वस्तु को सूत्र में ही अपना लिया जिसका देवसूरि ने भी सूत्र द्वारा ही अनुकरण किया। आ० हेमचन्द्र ने उसका अनुकरण तो किया पर उसे सूत्रबद्ध न कर वृत्ति में ही कह दिया—प्र० मी० १.२. १३–१७।

४—इतर सभी जैन तार्किकों की तरह आ० हेमचन्द्र ने भी प्रमाणसिद्ध, विकल्पसिद्ध और उभयसिद्ध रूप से पक्ष के तीन प्रकार बतलाए हैं। प्रमाणसिद्ध पक्ष मानने के बारे में तो किसी का मतभेद है ही नहीं, पर विकल्पसिद्ध और उभयसिद्ध पक्ष मानने में मतभेद है। विकल्पसिद्ध और प्रमाण-विकल्पसिद्ध पक्ष के विरुद्ध, जहाँ तक मालूम है, सबसे पहिले प्रश्न उठानेवाले धर्मकीर्त्ति ही हैं। यह अभी निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता कि धर्मकीर्त्ति का वह आक्षेप मीमांसकों के ऊपर रहा या जैनों के ऊपर या दोनों के ऊपर। फिर भी इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि धर्मकीर्त्ति के उस आक्षेप का सविस्तर जवाब जैन तर्कग्रन्थों में ही देखा जाता है। जवाब की जैन प्रक्रिया में सभी ने धर्मकीर्त्ति के उस आक्षेपीय पद्य (प्रमाणवा० १.१९२) को उद्धृत भी किया है।

मणिकार गङ्गेश ने[१] पक्षता का जो अन्तिम और सूक्ष्मतम निरूपण

---

१ 'उच्यते—सिषाधयिषाविरहसहकृतसाधकप्रमाणाभावो यत्रास्ति स पक्षः, तेन सिषाधयिषाविरहसहकृतं साधकप्रमाणं यत्रास्ति स न पक्षः, यत्र साधकप्रमाणे सत्यसति वा सिषाधयिषा यत्र योभयाभावस्तत्र विशिष्टाभावात् पक्षत्वम्।'—चिन्ता० अनु० गादा० पृ० ४३१–३२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया है उसका आ० हेमचन्द्र की कृति में आने का सम्भव ही न था फिर भी प्राचीन और अर्वाचीन सभी पक्ष लक्षणों के तुलनात्मक विचार के बाद इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि गङ्गेश का वह परिष्कृत विचार सभी पूर्ववर्ती नैयायिक, बौद्ध और जैन ग्रन्थों में पुरानी परिभाषा और पुराने ढङ्ग से पाया जाता है।

ई० १९३९] [प्रमाण मीमांसा

दृष्टान्त विचार

दृष्टान्त के विषय में इस जगह तीन बातें प्रस्तुत हैं—१—अनुमानाङ्गत्व का प्रश्न, २—लक्षण, ३—उपयोग।

१—धर्मकीर्ति ने हेतु का त्रैरूप्यकथन जो हेतुसमर्थन के नाम से प्रसिद्ध है उसमें ही दृष्टान्त का समावेश कर दिया है अतएव उनके मतानुसार दृष्टान्त हेतुसमर्थनघटक रूप से अनुमान का अङ्ग है और वह भी अविद्वानों के वास्ते। विद्वानों के वास्ते तो उक्त समर्थन के सिवाय हेतुमात्र ही कार्यसाधक होता है (प्रमाणवा० १. २८), इसलिए दृष्टान्त उनके लिए अनुमानाङ्ग नहीं। माणिक्यनन्दी (३ ३७-४२), देवसूरि (प्रमाणन० ३. २८, ३४—३८) और आ० हेमचन्द्र (प्र० मी० पृ० ४७) सभी ने दृष्टान्त को अनुमानाङ्ग नहीं माना है और विकल्प द्वारा अनुमान में उसकी उपयोगिता का खण्डन भी किया है, फिर भी उन सभी ने केवल मन्दमति शिष्यों के लिए परार्थानुमान में (प्रमाणन० ३. ४२, परी० ३. ४६) उसे व्याप्तिस्मारक बतलाया है तब प्रश्न होता है कि उनके अनुमानाङ्गत्व के खण्डन का अर्थ क्या है ? इसका जबाब यही है कि इन्होंने जो दृष्टान्त की अनुमानाङ्गता का प्रतिषेध किया है वह सकलानुमान की दृष्टि से अर्थात् अनुमान मात्र में दृष्टान्त को वे अङ्ग नहीं मानते। सिद्धसेन ने भी यही भाव संक्षिप्त रूप में सूचित किया है (न्याया० २०)। अतएव विचार करने पर बौद्ध और जैन तात्पर्य में कोई खास अन्तर नजर नहीं आता।

२—दृष्टान्त का सामान्य लक्षण न्यायसूत्र (१.१.२५) में है पर बौद्ध ग्रन्थों में वह नहीं देखा जाता। माणिक्यनन्दी ने भी सामान्य लक्षण नहीं कहा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसा कि सिद्धसेन ने पर देवसूरि (प्रमाणन० ३.४०) और आ० हेमचन्द्र ने सामान्य लक्षण भी बतला दिया है। न्यायसूत्र का दृष्टान्तलक्षण इतना व्यापक है कि अनुमान से भिन्न सामान्य व्यवहार में भी वह लागू पड़ जाता है जब कि जैनों का सामान्य दृष्टान्तलक्षण मात्र अनुमानोपयोगी है। साधर्म्य वैधर्म्य रूप से दृष्टान्त के दो भेद और उनके अलग-अलग लक्षण न्यायप्रवेश (पृ० १, २), न्यायावतार (का० १७, १८) में वैसे ही देखे जाते हैं जैसे परीक्षामुख (३. ४७ से) आदि (प्रमाणन० ३. ४१ से) पिछले ग्रन्थों में।

३—दृष्टान्त के उपयोग के संबन्ध में जैन विचारसरणी ऐकान्तिक नहीं। जैन तार्किक परार्थानुमान में जहाँ श्रोता अव्युत्पन्न हो वहीं दृष्टान्त का सार्थक्य मानते हैं। स्वार्थानुमान स्थल में भी जो प्रमाता व्याप्ति संबन्ध को भूल गया हो उसी को उसकी याद दिलाने के वास्ते दृष्टान्त की चरितार्थता मानते हैं—(स्याद्वादर० ३. ४२)।

ई० १६३६] [प्रमाण मीमांसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org